International Journal of Multidisciplinary Research in Social Science
ISSN: 2455-7943

lkBkRrjh fgUnh dfork % ifjos'k vkSj fopkjk/kkjk

MkO lR;sUnz dqekj feJk

आलमबाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

साहित्य जातीय अनुभवों की आधार भूमि पर ढाँचा निर्मित करता है। रचना और रचनाकार तत्कालीन परिवेश के संघर्ष से अपनी छवि को उजागर करते है। सामाजिक जीवन, मूल्यबोध, चेतना और अनुभवों से ही साहित्य और साहित्यकार रूपाकार ग्रहण करते है। युग सम्पृक्ति से परे रचनाकार सच्ची रचना का सृजन नहीं कर सकता। युग सम्पृक्ति से ही रचनाकार अपना रास्ता चुनता है। उसकी चेतना निर्मित होती है। इस सन्दर्भ में मार्क्स ने लिखा है–मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करती है। अतः साठोत्तर रचना जगत में प्रविष्ट होने से पूर्व उन परिस्थितियों से परिचित होना चाहिए जिनमें उसका सृजन किया गया है।

यह मात्र संयोग नहीं है की साठोत्तरी हिन्दी कविता के कवि अपना निकटतम् प्रेरक 'निराला' को और उसके पहले "कबीर" को मानते है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते है कि साठ के बाद की हिन्दी कविता नवीन अभिरूचि, सौन्दर्यबोध और नये संवेदन की कविता रही है और आगे लिखते है कि 'यह आकस्मिक नहीं हे कि साठोत्तर कवि भी अपना सम्बन्ध निराला से और उसके पहले कबीर से जोड़ते है।' समकालीन कविता की मानसिकता ही कुछ ऐसी रही है कि वरिष्ठ या कनिष्ठ सभी कवियों के केन्द्र बिन्दु निराला ही है और इसके पीछे 1961 में उनकी मृत्यु को माना जाता है, मृत्यु के बाद की उदासी में बड़े रचनाकारों की ध्वनियाँ सुनायी पड़ती है। इसी समय 1964 में मुक्तिबोध और नेहरू जी की मृत्यु एक बड़ा अन्तर पैदा करती है।

साठोत्तर कविता को जब एक साथ बहुत सारे 'क्षय' के साथ जोड़ते है तब हमारे लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि साठोत्तर काल के सामाजिक, राजनीतिक परिवेश को समझे क्योंकि किसी भी समय का साहित्य उस परिवेश व विचाराधारा से प्रभावित होता है। साठ के दशक का समय इस प्रकार की मृत्युपरक स्थितियों से एक प्रकार का बदला हुआ समय रहा है। जहाँ यह समय राजनैतिक व आर्थिक ढाँचे क चरमराने, नई सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षाओं, विखण्डित मूल्य दृष्टि से जुड़ा हुआ है, वही साहित्य में सर्वथा एक नयी पीढ़ी का आविर्भाव भी हुआ है जिससे नए भावबोध का पता चलता है। यहाँ से हिन्दी कविता अपनी जड़ो की तलाश करने लगी, क्योंकि उसके सामने समूचा हिन्दी साहित्य था। स्वयं भारत भूषण अग्रवाल ने लिखा है कि 'हिन्दी कविता की वह धारा जो निराला के बाद की कविताओं में स्पष्ट हुई और जिसने 'तार सप्तक' के माध्यम से अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी पिछले दो

दशकों से क्रमशः प्रबल व्यक्तिवाद और मधुर लयात्यकता की समर्पित होती चली गई और ऐसे समय में मुक्तिबोध ने कविता में हस्तक्षेप किया था।

साठोत्तरी कविता को पूर्णतः मोहभंग की कविता के रूप में भी समझा जाता है, जिसमें तीव्र अस्वीकार की भावना है। यह अस्वीकार की भावना तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण थी। इस सन्दर्भ में हम सबसे पहले निर्मल वर्मा का एक लेख (भारतीय लेखक और शासन तन्त्र) याद आता है, जिसमें वे वर्तमान भारतीय परिवेश में एक लेखक के केन्द्रीय संकट का विश्लेषण करते हुए लिखते है कि 'हम जिस शासन व्यवस्था में रह रहे हैं मुश्किल से वह डेढ़ – दो सौ वर्ष पुरानी है। अंग्रेजों ने अपनी जरूरतों के मुताबिक उसका ढांचा तैयार किया था। हम जहाँ एक तरफ उससे अनुशासित होते थे, आतंकित होते थे। दूसरी तरफ हमारे जीवन का एक बड़ा सूखा प्रान्तर था, हमारे धार्मिक विश्वास व अन्धविश्वास, हमारे दैनिक जीवन की मान–मर्यादाएँ, हमारी संस्कृति के खिड़की चौखटे थी जो उस अनुशासन से बाहर थे। इस तरह हमारा जीवन दो निर्जीव कठघरों में विभाजित था। एक का सम्बन्ध ऐसे शासन तंत्र से था जो अपने ढाँचे में स्वतन्त्र, अपनी आवश्यकताओं पर आत्मनिर्भर जनजीवन से अलग और ऊपर था। दूसरे सीमांत पर हमारे विश्वासों व संस्कारों का मिथक था, जो हमारे जीवन के दूसरे हिस्से को उसी तरह अनुशसित व आतंकित करता था। आज अंग्रेज नही रहे, गाँधी नही रहे, किन्तु शासन तंत्र व उसके आस–पास फैला एकांत आज भी विद्यमान है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद, हमारे यहाँ के बुद्धिजीवी व औपनिवेशिक तंत्र में कोई विरोध नहीं था। किन्तु धीरे–धीरे इस व्यवस्था में उत्पन्न हो रही विचौलिया संस्कृति ने इस बुद्धिजीवी को अप्रासंगिक बना डाला जिससे बुद्धिजीवी की अपनी स्थिति जनसाधारण की स्थिति से बहुत अलग न रही। इस कारण से उसकी संवेदना जो अब तक किसी विचारधारा से अनुस्यूत होती थी, सीधे समसामयिक अनुभव से जुड़ गयी। यह ही साठोत्तरी का परिवेश रहा। जहाँ समाज मिथ्या संतोष, आशा व अपेक्षाओं का समाज रहा है। नीति विहीन राजनीति एवं न्यायहीन न्याय व्यवस्था ने समाज में पाखण्डता, धूर्तता, छल और अनैतिकता को बढावा दिया है। यहाँ पर पश्चिमी संस्कृति के सानिध्य से भारतीय संस्कृति प्रभावित होकर नये प्रकार के मानसिक संघर्षो को जन्म देती है।

देश में जब इस प्रकार का वातावरण हो जहाँ हर एक चीज बेहद गड़बड़ बौर अव्यवस्थित हो तो इस उथल–पुथल का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पड़ता है। इस वातावरण और परिवेश ने भारतीयों की मानसिकता को भी प्रभावित किया जिससे उनके भाव विचार में परिवर्तन आने के साथ साथ उनके सोचने विचारने की प्रक्रिया भी अछूती न रह सकी। सन् 60 के पश्चात उसके परिवेश और परिस्थितियों के दबाव के फलस्वरूप जो कविता सामने आयी वह निश्चय ही 60 से पूर्व की कविता से भिन्न थी। क्योंकि दोनो काल खण्डों की परिस्थितियाँ तथा परिवेश भिन्न थे। यह अन्तर हमें अनुभूति के स्तर पर ही नहीं अभिव्यक्ति के स्तर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। सातवें दशक की

अनुभूतियाँ इतनी तीव्र, आक्रोशपूर्ण और विरोधात्मक थी कि उन्हें परम्परागत काव्य भाषा, छंद, प्रतीक आदि के द्वारा अभिव्यक्त करना असम्भव था। अतः इस अनुभूति ने काव्य शिल्प के मुहावरे को बदल दिया।

सन् 60 तक आते–आते हिन्दी कविता की प्रकृति कुछ बदलने लगती है। जो नई कविता बचकानी मानवीयता के खोखले स्वांग, बौद्धिकता के छूछे प्रयास, नव रहस्यवाद और उल्टे सीधे शिल्पगत प्रयोगों से होकर गुजर रही थी, वह निश्चय ही नई नहीं रही थी। युवा कवियों का एक वर्ग अनुभव करने लगा था कि नवीन नई कविता समकालीन यथार्थ का ईमानदार अभिव्यक्ति नहीं कर पा रही है। डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव लिखते है–'सन 60 को रेखांकित करने का मतलब है,उन बहुत से कारणों को रेखांकित करना, जिन्होंने सूक्ष्म सौदर्यवादी रूझान को सबसे अधिक नुकसान पहुचाँया । सन् 60 के बाद की कविता नयी कविता के महत्वपूर्ण दौऱ के बाद की कविता है , जो 1950 से 1960 के बीच सूक्ष्म मानसिक व रागात्मक स्थितियों के चित्रण के उद्देश्य से लिखी जा रही थी।' सन् 60 के आसपास नयी कविता की धारा अपने से अलग होती दिखायी पड़ती है। काव्यधारा में यह परिवर्तन अचानक पैदा होने वाली कोई नवीन स्थिति न होकर नयी कविता का ही विकास है और वे तत्व इसमें उपरिथत है जिसका साठोत्तर कविता में विकास हुआ।

डॉ0 रामदरश मिश्र ने लिखा है – " सन् 60 के बाद कविता में जो स्वर उगें है, वे नयी कविता में बीज रूप से वर्तमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित रहे। ये स्वर नयी कविता के मूलाधार नहीं रहे हैं। किन्तु रहे है नयी कविता से सर्वथा विच्छिन्न या विरोधी स्वर के रूप में इनकी व्याख्या नहीं हो सकती।"

इस तरह से हम देखते है कि साठोत्तरी हिन्दी कविता में परिवेश के स्तर पर राजनैतिक परिस्थितियाँ सक्रिय रही है और यह वह राजनीति नहीं है जो सामान्यतया समझी जाती है, बल्कि वह राजनीति है जिसका साहित्यिक स्वरूप होता है जो राजनीतिक विचाराधारा देश में चलती है उसका एक सांस्कृतिक पक्ष होता है जो साहित्य में निखरता है । इन सब विचाराधाराओं के होते हुए परिवेश की स्थिति कुछ ऐसी थी कि हर जगह छद्मता का प्रभाव था। ऐसे ही समय में मुक्तिबोध ने लिखा है–

तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी

कि तद्गत लक्ष्य में से ही

हृदय के नेत्र जागेंगे

वह जीवन लक्ष्य उनके

प्राप्त करने की क्रिया में से

उभर ऊपर

विकसते जायेंगे निज के

तुम्हारे गुण

कि अपनी मुक्ति के रास्ते

अकेले में नही मिलते।

साठोत्तरी कविता पहली कविता है जो वास्तव में जनतंत्र की कविता है जिसमें जनगण के सुख–दुख ही नहीं आम आदमी की नियति के प्रति भी एक सीधा सरोकार है उसे राजनीतिक कविता मानना सही नही होगा किन्तु व निःसंदेह राजनैतिक आदमी की कविता है अर्थात वह यह मानकर चलती है कि अपने युग में आदमी की नियति राजनीति से अटूट रूप से जुड़ी है। रघुवीर सहाय ने राजनीति के विकृत रूप को हमारे सामने रखा है। 'आत्महत्या के विरूद्व' की 'अपने आप और बेकार कविता' मे वे सामान्य आदमी को पूरी तरह से व्यर्थ बतलाते हुए उसका उपहास करते हैं:–

देश की व्यवस्था का विराट वैभव

व्याप्त है चारो ओर

एक कोने मे दुबक ही तो सकता हूँ

सब लोग जो कुछ रचातें हैं उसमें

केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूँ

वह मै करता हूँ

किसी से नहीं डरता हूँ

अपने आप और बेकार

साठोत्तरी कविता विकृत, शोषित और यातनामय जिन्दगी का विरोध है, जिसका लक्ष्य है मानवीय जिंदगी और सही व्यवस्था की तलाश। हिन्दी के अधिकांश कवि निम्न मध्यवर्ग के है अतः कवि सामाजिक अन्तर्विरोध का स्वंय भोक्ता है। उस पीड़ा को जो सारे समाज मे व्याप्त है कवि स्वंय अनुभव कर रहा है अतः उसके स्वर में आक्रोश और

ललकार का भाव आ जाता है। वह अपनी बौखलाहट को गाली का रूप दे देता है, जिससे दूसरे भी बौखला उठें और समाज में व्याप्त सन्नाटा टूटे। इसलिए कवि की क्रान्ति चेतना सिर्फ शब्द न होकर यथार्थ से परिचालित है। साठोत्तर कविता साधारण आदमी स्थिति और नियति के प्रति सचेत है उसमे एक कशमकश और बेचैनी है जो किसी एकांत की ओर नहीं वरन् एक ठोस संघर्ष की ओर ले जाती है। उसमें हमे सामान्यजन के ह्रदय की धड़कने सुनायी देती हैं और तत्कालीन जीवन की जटिलता से उत्पन्न तस्वीर भी पा सकते हैं। कवि मुक्तिबोध क्रान्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं:–

घूम उठे खम्भे

भयानक वेग से चल पड़े हवा में।

दादा का सोटा भी करता है दॉव पेच,

गगन मे नाच रही कक्का की लाठी

यहाँ तक की बच्चे की पै मै भी उड़ती

तेजी से लहर

मुन्ने की सलेट पट्टी

एक –एक वस्तु या एक–एक प्राणग्नि बम है,

ये परमास्त्र है, प्रक्षेयास्त्र है, बम है

शून्याकाश में से होते हुए वे

अरे अरि पर ही टूट पड़े अनिवार।

यह कथा नही है यह सब सच है, हॉ भई।।

क्हीं आग लग गई कहीं गोली चल गई।।

मानवीय मूल्यों के विघटन की समस्या हमारे समाज के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है। साठोत्तरी कविता अवमूल्यन की स्थिति को बेनकाब करती हुई सही मूल्यों की स्थापना के प्रयास में रत है। साठोत्तर कवियों में जो आक्रोश स्थितियों के प्रति व्याप्त है वह वैयक्तिक न होकर जन आक्रोश का प्रतिनिधि बन जाता है। क्योंकि उसमें समाज की

सद्आकाँक्षाएँ विद्यमान है। असंगति, अन्याय, उत्पीड़न और दमन को देखकर इस कविता में व्यवस्था के प्रति तीव्र असहमति और अस्वीकार का स्वर आ गया है। कैलाश वाजपेयी इस व्यवस्था से इतना परेशान हो उठे हैं कि उसकी स्थिति बौखलाए हुए आदमी के समान हो उठी हैः–

मै इस व्यवस्था से बुरी तरह घबरा गया हूँ

जिन्दा रहने का दर्द

और दर्द के अहसास पर शर्मिन्दा

मै काफी रह लिया जिन्दा

अब नही होता क्या करूँ।

चन्द्रकांत देवताले की कविता विसंगतियों को चीरफाड़ कर रख देती हैं। वास्तव में हमारे आसपास तनाव इतना बढ गया है कि कविता मे राजनीति अनिवार्य हो गई है। इसके बिना कवि युग जीवन की सच्चाईयों को ईमानदारी से प्रमाणिक रूप में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। उन्होंने समकालीन राजनीति के कपटपूर्ण हालातों और मानव नियति का संकेत कई जगह जोरदार भाषा में दिया है।

खून के गाढ़े चकतों के भीतर

धँस कर सड़ रहीं है

जो जहरीली सदी

उसके लिए जिम्मेदार है

आदमी की खाल में

गधे और भेड़ियों का

आधा–आधा भेजा लिए

घूमते राजनीति के झण्डाबरदार

पूरा देश बूचड़खाने की तरह।

ईमानदारी, नैतिकता, आत्मीयता, सहानुभूति, प्रेम आज के जीवन मे नीयत के अपनेपन में कही खो गए हैं। कवि ने देखा कि हर ईमानदारी का एक चोर दरवाजा होता है जो सण्डास की बगल में खुलता है। प्रतिष्ठित व्यक्तियों को गलत रास्ते से गुजरते देखा जा सकता है।

मैंने अहिंसा को

एक सत्तारूढ शब्द का गला काटते देखा

मैने ईमानदारी को अपनी चोर जेबे

भरते हुए देखा

मैने विवके को

चापलूसों के तलवे चाटते देखा

साठोत्तर जीवन मे मानवीय मूल्यों, आस्था, विश्वास, उत्साह, प्रेम, भाईचारा, करूणा, सहानुभूति, परोपकार आदि अर्थहीन हो गये और अनास्था, अमानवीयता अवमूल्यन, निराशा, धार्मिक कट्टरता, अलगाववाद का साम्राज्य छा गया। इन सबके चलते जनतंत्र और समाजवाद की मूल्यवत्ता मे गिरावट आई और व्यवस्था के प्रति नये कवियों के मन मे आक्रोश पैदा हुआ। साठोत्तर जगत एवं व्यवस्था के सन्दर्भ में डा0 रमेश कुन्तल मेघ लिखतें हैं– "यू तो सॉंतवे में भी वही पूँजीवादी व्यवस्था थी जिसे नए और युवक कवियों ने मुखोटावादी तथा क्रूर एवं गलत व्यवस्था कहा है। यही व्यवस्था छठे दशक में भी थी और अब आठवें दशक में भी है।" जनता की वास्तविकताओं के विषय में जगूड़ी कहते हैं कि :–

यही तो बल हो गया है जनतन्त्र में

गाली देना तो सरल हो गया।

तुम्हें क्यों खुजली हो रही है

स्तिफा क्यों देते हो।

गलने दो मस्ती में

साठोत्तर कविता वर्तमान व्यवस्था को बदलने के लिए सभी शोषित जनों को एकजुट होने का आह्वान करती है क्योकि पूँजीवादी व्यवस्था से मुक्ति कभी भी अकेले व्यक्ति के प्रयासों से नहीं हो सकती। पूँजीवादी ताकतों से निबटने के लिए संगठन और एकता की जरूरत हैः–

याद रखों।

कभी अकेले में मुक्ति न मिलती

यदि वह है तो सबके ही साथ है।

कवि पूँजीवादी व्यवस्था मे जीने वाले लोगों की मानसिकता से परिचित वे जानते हैं कि पूँजीवादी दिमाग में बदलाव लाना मुश्किल है। अतः उसको हटाना ही श्रेयस्कर है। इसलिए सबके साथ मिलकर पूँजीवादी ताकतों से लड़ने के लिए आगे बढना होगा। इस व्यवस्था के सभी गढ समाप्त करने होंगेः–

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे।

उठाने ही होंगे

तोड़ने ही होंगे मठ और गढ सब

साठोत्तरी कविता एक प्रवाहमान कविता है जो वास्तविकता के अधिकाधिक पहलुओं को छूती चलती है। इसकी चेतना नाना स्तरों को छूकर एक ठोस और विश्वसनीय संसार को मूर्त करती है। साठोत्तरी कविता का काव्य है– युग की सच्चाईयों का यर्थाथपरक विवरण प्रस्तुत करना, सबल जन हितैषी तत्वों का विश्लेषण और जनवादी चेतना का प्रतिपादन करना है। साठोत्तरी कविता शोषको, लुटेरों, राजनीतिज्ञों के शोषण से जनता को मुक्त कराने के लिए मोहग्रस्त भीड़ की सच्चाई से परिचित कराना चाहती है। इसलिए कवि प्रजातंत्र की असफलताओं को गिनता है। सामंती चरित्रों को नकारता है। नपुंसक आश्वासनों के भ्रमों को तोड़ता है। व्यवस्था को मटियामेट करता है।

साठोत्तरी कविता मानव नियति को सार्थक दिशा की ओर मोड़ने के प्रयास में रत है। इस दौर के कवि पूरी सतर्कता और उत्तरदायित्व के साथ कविता के क्षेत्र में उतरे हैं और जीवन मे सार्थकता पैदा करने, जीवन स्तर पैदा करने, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील है।सन् 60 के बाद कविता जिन्दगी के संघर्ष को झेलती है और संघर्षों के तमाम दबावों तनावों से गुजरती हुई उस आदमी तक पहुँचती है जिसका जीना आज दूभर हो गया है। कविता के क्षेत्र में यह जागरूकता विशेष महत्व रखती है। ये कवि कवि कर्म को पूरी ईमानदारी से सार्थकता की ओर बढ़ा रहे हैं। सार्थकता को रेखांकित करने और जीवन का एक पहलू बनाने के लिए ही उन्होंने

ऐसे प्रसंगों की सच्चाई को प्रस्तुत किया है जो मानव जाति के लिए एक कलंक है। मानवीय मूल्यों के हनन का चित्रांकन वे वस्तुतः किसी के अन्तर्गत नहीं अपितु सार्थकता को ही पाने का एक तरीका है।

इस प्रकार साठोत्तरी कविता जहाँ समाज मे व्याप्त मूल्यहीनता को उजागर करती है। वही एक क्षीण सी आशा की किरण भी वहाँ दिखलाई पड़ती है। साठोत्तरी कविता भारतीय संस्कृति के सार्थक जीवन मूल्यों को स्वीकारने पर बल देती है। यह कविता जिन्दगी के तमाम बाधाओं और समस्याओं को झेलती हुई आगे बढती जाती है। साठोत्तरी कवियों ने जीवन के खण्डित होते हुए स्वपनों की व्यथा, उसमें से उगति हुई अस्वीकृति, उग्रता और तल्ख अनुभवों को पहचाना और उन्हें वाणी देकर बुलन्द किया।

I UnHk

1. 'ए कान्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटीक ऑफ पोलिटिकल एकादमीः भूमिका से
2. श्रीप्रकाश शुक्ल : हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ0 116
3. श्रीप्रकाश शुक्ल : हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ0 117
4. श्रीप्रकाश शुक्ल : हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ0 120
5. डॉ0 रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ0 181
6. श्रीप्रकाश शुक्ल : हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ0 125
7. रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरूद्व, पृ0 11
8. मुक्तिबोध : मुक्तिबोध रचनावली भाग–2, पृ0 385
9. कैलाश वाजपेयी : देहान्त से हटकर, पृ0 43
10. चन्द्रकांत देवताले : दीवारों पर खून से, पृ0 12
11. धूमिल : संसद से सड़क तक, पृ0 119
12. लीलाधर जगूड़ी : नाटक जारी है, पृ0 92
13. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0 225
14. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0 261
15. रमेश कुंतल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, पृ0 455

International Journal of Multidisciplinary Research in Social Science :: ISSN : 2455-7943 IJMRSS ॥ विद्वान्सर्वत्र पूज्यते ॥